UNIVERSAL LIBRARY
OU_186058
UNIVERSAL LIBRARY

P—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

l No. H81 A85B Accession No. P. G. H2298

:hor अस्थाना, घनश्याम

le भोर के सपने. 1956

This book should be returned on or before the date last marked below.

भोर के सपने

घनश्याम अस्थाना

विनोद पुस्तक मन्दिर
हास्पिटल रोड, आगरा।

प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हास्पिटल रोड, आगरा।

प्रथम संस्करण
जनवरी—१९५६
मूल्य १॥)

मुद्रक—राजकिशोर अग्रवाल, कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बागमुजफ्फर खाँ, आगरा।

भूमिका

आधुनिक कविता के आलोचक बहुधा कहा करते हैं कि हिन्दी में नई प्रतिभा नहीं है। इसका मूल कारण यह है कि जहाँ कोई आलोचक प्राचीन कवियों की रचनाओं में ही अपने को डुबा देता है वहाँ अन्य लोग अपने अपने पूर्वाग्रहों से अपनी संकुचित अहम्मण्यता में आबद्ध रहते हैं। किन्तु इन परभाग्योपजीवी आलोचकों के प्रति सुखावह निरपेक्षता रखने वाला यह कवि इतना सहज और गहरा है कि उसे किसी भी दलीय अथवा वैचारिक सहायता की आवश्यकता ही नहीं है।

घनश्याम के काव्य में आधुनिकता के नाम पर लीक नहीं पीटी गई है और साथ ही वे किसी प्रकार से भी किसी के बौद्धिक दास नहीं रहे हैं। यश के प्रति उदासीन यह कवि इसलिये जनप्रिय नहीं हुआ है कि वह कलकण्ठ है वरन् इसलिये कि उसकी कविता में एक आर्द्र हृदय भी है, केवल उसकी भावुकता ही नहीं। उसने अपना स्थान समय से पूर्व ही बना भी लिया है। आज न सही, अध्यापक-आलोचकों को एक दिन यही कवितायें संदर्भ सहित व्याख्या करके पढ़नी-पढ़ानी होंगी। इस कवि में राजनीतिक प्रचार मात्र नहीं है, उसकी कविता अपना स्थायी महत्त्व रखती है क्योंकि वह जीवन संघर्ष में व्यक्ति को उदात्त बनाती है। शब्द लालित्य, झंकारते पदों का संचरण, संगीत की झूमती हुई गंध और सर्वोपरि उसकी कमनीय कल्पना, उसे जीवन्त प्रतिभा के रूप में उठा देती हैं। न तो घनश्याम इतने असमर्थ हैं कि प्रयोगवाद

की बैसाखियाँ लेकर चलें और यश के टुकड़े पाने के लिये क्षमा माँग माँग कर कवितायें लिखें, न वे इतने संकुचित ही हो सके हैं कि समाज की चेतना को छोड़ कर कुत्सा की ओर प्रवृत्त हो जायें। यहाँ एक पक्षी है जो नीलाम्बर में उड़ता है, जहाँ नील मेघों में सौदामिनि कौंधती है तो कभी अन्याय के प्रति उठता हुआ मृत्युञ्जय निनाद शताब्दियों के गतिरोध को तोड़ता हुआ सा लगता है। नारी के रूप में जिस गम्भीर सौन्दर्य का चित्रण इस कवि ने किया है वह उसकी उस गहराई का परिचायक है जिससे उसने प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य का सुन्दर जाल बुन दिया है। मैं सोचता हूँ कि अभावहीन तो सम्भवतः कोई न होगा किन्तु जहाँ अभाव अभाव बन कर रहते हुए भी भावों को प्रेरणा दे सकें वह काव्य घनश्याम का है। विगत दस वर्षों में लिखी हुई कविताओं में से चुनकर वे आपके सामने ये संग्रह मेरे अनुरोध से ही प्रकाशित करा रहे हैं। मैं समझता हूँ आप इन कविताओं के पढ़ने के बाद यही कहेंगे कि रांगेय राघव शब्द-कृपण है, तभी दूसरे की प्रशंसा भी नहीं कर सका। शुभमस्तु।

—रांगेय राघव

दो शब्द

घनश्याम अस्थाना आगरे के सबसे अच्छे कवि हैं; हिन्दी की नयी पीढ़ी के श्रेष्ठ कवियों में उनका स्थान है। अपनी ललित और गेय रचनाओं के कारण वे खूब लोकप्रिय हुए हैं। उनकी सुकुमार संवेदनायें और मृदु भावनायें तरुण हृदयों को विशेष रूप से आकर्षित करती हैं। चाँद, तारे, सावन, बादल, बरसात,—ये सब उनके मित्र हैं जिनके साथ वह किसी की याद को भुलाने का विफल किन्तु सरस प्रयास करते हैं।

कवि घनश्याम अस्थाना का एक सुघर व्यक्तित्व है। उन्हें यात्रा, चित्रकला और साहित्यचर्चा से विशेष रुचि है। मार्दव के सिवा उनमें परुषतत्त्व भी है जो इस संग्रह की अनेक रचनाओं में उभर कर आया है। उनकी चेतना आत्मकेन्द्रित होते हुए भी वस्तुकेन्द्रित होने में समर्थ है।

उनके इस पहले कवितासंग्रह का, जिसे मेरे कविता संग्रह के प्रकाशित होने तक रुकना चाहिये था, मैं हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

गोकुलपुरा, आगरा
१२. १२. '५५.

रामविलास शर्मा

मेरी तरफ़ से—

ये कुछ कवितायें आपके सामने पेश कर रहा हूँ । इनका चुनाव ज़रूर किया गया है—लेकिन अच्छी हैं, इसकी कोई 'गारण्टी' नहीं दे पाऊँगा । सिर्फ़ इतना कहना है कि जो कुछ भी बात इन कविताओं में है वह मन की गहराइयों से ही उठी है—अगर ये अपनी बात कहने में या दूसरे के मन-प्राण छूने में समर्थ नहीं हो सकी हैं तो यह मेरी अभिव्यक्ति की कमी ही है, दूसरे में सहृदयता अथवा भावुकता की नहीं ।

एक बात और— ये सब छायाऐं ज़िन्दगी की हैं—किसी अनादि-अनंत विराट् की आराधना नहीं ।

घनश्याम अस्थाना

रामप्रकाश सेठी को—

आभार

ओ मेरे अधिकारों की मौन समीक्षा !
मेरे प्राणों की सजल अनलमयि दीक्षा !
तिमिरावृत थकित डगर की ज्योतिर्लेखा;
तू स्निग्ध स्नेह की निर्मल सीमारेखा !
तू हिमशुभ्रा, मन की करुणा की वाणी,
मेरे शतजन्मों की श्रद्धा, कल्याणी !

—घनश्याम

विषय-सूची

१	चाँदी-सी यामा का लेकर आभार	१
२	मेघों की रानी	२
३	वर्षा का एक गीत	४
४	सावन के पाहुन	५
५	घिरी तुम्हारी याद	७
६	रिमझिम अभी बरसे नहीं	६
७	कितनी गहरी है पीर	११
८	सजल सघन घन	१३
६	इतनी छोटी-सी बात	१५
१०	और कब तक गीत यह चलता रहेगा	१७
११	बेबसी का एक गीत	१८
१२	कैण्डी (लंका) में वर्षा की एक रात	१
१३	झाँकती है पीर मृदु मुस्कान में भी	२१
१४	उलझ गया मेरी पलकों में	२२
१५	आखिर	२४
१६	अब याद नहीं आती	२६
१७	मेरे प्राणों के मीत	२८
१८	कौन जीता और हारा कौन है ?	३०
१६	चुक गया है स्नेह मेरा प्यार हारा	३२
२०	नीरव मेरे गीत	३४
२१	कौन मेरे दर्द को पहचानता है ?	३६
२२	सुन पाओ मेरे गीत	३७

२३	मैंने चाँद डूबते देखा	३६
२४	आज एक याद	४३
२५	पूनम की रात	४४
२६	शिशिर के मेघ	४६
२७	कितनी निष्ठुर है, चाँद, चाँदनी तेरी	४८
२८	याद के पल	५०
२९	स्वप्न मेरे गीत बनकर सत्य हो जाओ	५२
३०	चुम्बनों में प्यास भी है, तृप्ति भी है	५४
३१	तुम वहीं मिलीं	५५
३२	प्यार मेरा कौन-सा आवास खोजे	५७
३३	लहर और चाँद	५९
३४	हो गयीं तुम दूर चुपके से, सलोनी	६३
३५	गीत में छाया किसी के प्यार की है	६५
३६	अंतर्द्वन्द्व	६६
३७	मत लौटो मेरे पास	७१
३८	आज यह कैसा प्रभंजन उठ रहा है ?	७३
३९	नारी	७६
४०	शिकायत	७९
४१	कुछ रूबाइयाँ	८०

चाँदी-सी यामा का लेकर आभार

चाँदी-सी यामा का लेकर आभार,
तन्द्रिल-सी पलकों में जागता ख़ुमार,
अलसाई आँखों से बोला सप्यार—
सोये-से तनमन में यौवन भर दो !

किरणों के बंध खुले, पाशमुक्त रात,
लज्जा से सिहर उठे ज्योत्स्ना के गात,
शबनम शरमायी, मुस्कायी मधुवात—
गूँजी—मनवल्लकि को झंकृत कर दो !

झिलमिल-सी ध्वांत में प्रकाश-रेख क्षीण
सपनों की सतरंगी लहरों-सी वीण,
चलती बिखराती-सी रागिनी प्रवीण—
कण-कण को गायन से मुखरित कर दो !

बिखरी नव-स्वर्णिमा, निशीथिनी सभीत,
अधरों की कोर में हँसी उषा विनीत,
फूट पड़ा किरणों से युग का संगीत—
संसृति के कण-कण में सरगम भर दो !

●

- २ -

मेघों की रानी

नृत्य करो मेघों की रानी,
गूँजे द्रिम द्रिम राग रे !
रिमझिम रिमझिम की सरगम पर
क्वणन् करे
नूपुरवा !
पलछिन चकित तड़ित थिरकन पर
झूम उठे
बादरवा !
अमराई में पागल पिकदल गाये मधुर विहाग रे !
नृत्य करो मेघों की रानी, गूँजे द्रिमद्रिम राग रे !

बिखरे घन-दल नैश अलक-से
मतवारे
कजरारे !
बरसे बादल सजल पलक - से
अँधियारे
निंदियारे !
बादल रिमझिम रागिनियों से खेले रस-मधु फाग रे !
नृत्य करो मेघों की रानी, गूँजे द्रिम द्रिम राग रे !

सर्मर सर्मर तरु-तरु पल्लव
नाच उठे
इठलाते !
विहग माल के कलरव स्वर नव
बाज उठे
मदमाते ।
किरण माँग भर इन्द्रधनुष की माँगे अचल सुहाग रे !
नृत्य करो मेंघों की रानी, गूँजे द्रिम द्रिम राग रे !

आलइण्डिया रेडियो दिल्ली से
प्रसारित—१९५२

- ४ -

वर्षा का एक गीत

ढल गयी दुपरिया जेठ मास की चुपके से
नीले असाढ़ का अम्बर कजराया-सा है;
छिप गयी वधू-सी
लाज मार कर स्वर्ण धूप
चाँदी की बदली के घूँघट में पल भर को !

हैं दौड़ रहीं कजरारी छाया धरती पर
अम्बर में बहते श्याम सलोने बादल की,
हो दौड़ रहा
जैसे चकोर का पागलपन
उस कभी न मिलने वाले विधु की आस किये !

लेकर मीठी मल्हार गुलाबी ओठों पर
मुस्कुरा उठी धरती पसार शरबती नयन,
झुक गयीं आम की डालें
बौरी,
लाज भरी,
नत नयन किसी की
आकुल मौन-प्रतीक्षा में !

●

सावन के पाहुन

सावन के पाहुन मेघ घुमड़ घिर आये !
इन्द्रधनुष की वीणा पर मृदु
प्यार भरे स्वर मेरे,
उलझे - से, अलसाये - से
बज उठते साँझ-सबेरे !
दूर देश के थके बटोही-से
नभ के आँगन में—
सावन के पाहुन मेघ घुमड़ कर आये !
सावन के पाहुन मेघ घुमड़ घिर आये !

खेले जब घन का पागलपन
नभ से आँख मिचौनी,
बिजली की माया में मत
डर जाना, चाँद-सलोनी !
में समेट लूँगा तुमको
प्रिय, भुजपाशों में कसकर—
पगली धरती का प्यार कि जब बौराये !
सावन के पाहुन मेघ घुमड़ घिर आये !

खोज बसेरा पगले पंछी
नीर भरी बदरी में
डूबे-उतराये नभ का मन
रिमझिम की कजरी में

किस परदेसी प्रीतम की
सुधियों में बेसुध, तन्मय—
वह लाज भरी नववधू मल्हारें गाये ?
सावन के पाहुन मेघ घुमड़ घिर आये !

थम जाने दो, अरी बावरी,
ये मधुभरी फुहारें !
रुको, अभी पथ रोक रहीं,
ये मदमाती बौछारें !
और भींगलें कुछ पल को
हम-तुम इस मधु-वर्षा में—
जाने फिर कब यह पुण्य-घड़ी बहुराये !
सावन के पाहुन मेघ घुमड़ घिर आये !

'नवयुग' साप्ताहिक
दिल्ली

घिरी तुम्हारी याद

कजरारे मेघों-सी मन में घिरी तुम्हारी याद, बावरी !

दूर क्षितिज पर साँझ उनींदी
सतरंगी चूनर लहराती,
श्याम गगन में मेघमालिका
रिमझिम मत्त मल्हारें गाती !
पुलक चूम जाती सुधि निशि की
अम्बर के सुरमई नयन को—
मेरे पलक चूम जाता है, अम्बर का उन्माद, बावरी !
कजरारे मेघों-सी मन में घिरी तुम्हारी याद, बावरी !

मेघों का कारवाँ गगन में
खोज रहा है अपनी राहें !
मुझे याद आ रहीं प्रतीक्षा में
आकुल, खामोश निगाहें !
मैं बैठा हूँ यहाँ बेबसी में
खोया, ग़मगीन, अकेला—
मुझे दूर से प्यार भेजता, तेरी छवि का चाँद, बावरी।
कजरारे मेघों-सी मन में घिरी तुम्हारी याद बावरी !

बाँहों में बरसात समेटे
गगन नशीले गीत न गाओ;
सुधि की, बैरिन रागिनियों मे
व्यर्थ नहीं मन को भरमाओ !
तुमही कहो, कभी स्वर मेरे
क्या यह दूरी नाप सकेंगे ?—
ले जायेगी मेघपरी क्या तुम तक यह संवाद, बावरी ?
कजरारे मेघों-सी मन में घिरी तुम्हारी याद, बावरी !

'प्रवाह' मासिक
अकोला

रिमझिम अभी बरसे नहीं

मेरे पलक झँपते रहें, जब गीत तुम गाती चलो !
रिमझिम अभी बरसे नहीं
आकाश के नीले नयन;
बाक़ी ख़ुमारी है अभी
इन बादलों की छाँह बन;

जागी किसी की भूलती-सी
याद बनकर चाँदनी !
उतरा लहर पर गीत मेरा
बन तुम्हारी रागिनी !

इन झुरमुटों की गोद में
पंछी अभी सोया नहीं—
ख़ामोश लेकिन नीड़ है, तुम प्यार बिखराती चलो !
मेरे पलक झँपते रहें, जब गीत तुम गाती चलो !

अँगड़ाइयाँ लेती रहें
घनमाल की मदहोशियाँ;
उलझी रहें इन झुरमुटों
में रात की ख़ामोशियाँ;

नीरव निशा तन्द्रिल
लहर के गीत को सुनती रहे;
छिपकर सघन घन में
सजल सपने सुखद बुनती रहे।

उलझे रहें स्वर प्यार के
इन बादलों की वीणा में—

बन कर गगन की नीलिमा मधु-स्वप्न बरसाती चलो।
मेरे पलक झँपते रहें, जब गीत तुम गाती चलो!

जब नींद में उलझी रहे
उन्मन विमूक विभावरी,
जब मेघमाला पर उठे कर
नृत्य विद्युत बावरी!

जब गूँजते नभ मध्य
बादल-राग के सरगम रहें,
इस प्यार की बरसात में
प्रिय, भींगते हम-तुम रहें!

उस पार मेघों के हँसे
मुस्कान बनकर चाँदनी,—

इस पार, रानी, चाँदनी बन आज मुस्काती चलो!
मेरे पलक झँपते रहें, जब गीत तुम गाती चलो।

'नवयुग' साप्ताहिक
दिल्ली

●

कितनी गहरी है पीर

कितनी गहरी है पीर, जलधि भर आया !

आकुल लहरों की फरियादें
नहीं किनारा सुनता,
चाँद सुरमई बदरी में
एकाकी सपने बुनता,
तन मन दोनों आज अकेले
भटक गए सुधियों में,
सूने नयनों में घन सावन घिर आया !
कितनी गहरी है पीर, जलधि भर आया !

अंधियारे नभ की गीली
आँखों से लगी झड़ी है,
लेकिन मैं कैसे पहचानूँ
किस की व्यथा बड़ी है,
मेरे स्वर खामोश, मगर
दृग साक्षी हैं पीड़ा के,
हर बूँद बरसती ले आँसू की छाया !
कितनी गहरी है पीर, जलधि भर आया !

झाँक रहीं बादल से तारों
की ख़ामोश निगाहें;
खुलीं प्रतीक्षा में बेबस
लहरों की आतुर बाँहें;
कौन न जाने कब तक
देखा करता राह किसी की—
पर भरमाती है जनम जनम छल माया!
कितनी गहरी है पीर, जलधि भर आया!

'सरिता'
मई ५५

सजल सघन घन

सजल सघन घन उन्मन उन्मन
बरसे रिमझिम रे!
प्रमुदित विद्युत रजत किरणवत
दीपक घन-दल कोर रे!
गुंजित द्रिमद्रिम, द्रुम-द्रुम, दिशिदिशि
मुखरित अम्बर छोर रे!

तड़ित समर्पित जलद-विचुम्बन,
बिखरे नीलम रे!
सजल सघन घन उन्मन उन्मन
बरसे रिमझिम रे!

पुलक विहग-कुल कलरव पलपल
गाये मेघ-मल्हार रे!
अमराई बौराये, पिक बिखराये
पागल प्यार रे!

भींगे मलय-समीरण कणकण
भींगें हम-तुम रे!
सजल सघन घन उन्मन उन्मन
बरसे रिमझिम रे!

तिमिर लहर-से घन पर तन्द्रिल
इन्द्रधनुष के छन्द रे!
सिक्त पलक पर ज्यों जल के कण
छलक पड़ें द्रुत-मन्द रे!

झूमें कजरारे बादरवा,
बाजे सरगम रे!
सजल सघन घन उन्मन उन्मन
बरसे रिमझिम रे!

इतनी छोटी-सी बात

इतनी छोटी-सी बात, नहीं प्रिय रूठो !
उन पागल घड़ियों में जब
जागा संगीत तुम्हारा,
भुज पाशों के इन्द्रजाल में,
युग की साधें हारा !
माना यह है भूल, मगर
है कितनी मादक, रानी—
पागलपन की यह रात, नहीं प्रिय रूठो !
इतनी छोटी-सी बात, नहीं प्रिय रूठो !

सजल गगन का गीत, किरन के
मन की चाह अधूरी !
दो अधरों में शेष अभी है
तृप्ति-प्यास की दूरी !
पलभर के बंधन में रानी,
युग-युग की निधि संचित—
यह है पलभर का साथ, नहीं प्रिय रूठो !
इतनी छोटी-सी बात, नहीं प्रिय रूठो !

मेघों के उस पार न झाँको
निशि शरमा जायेगी,
नीलम चितवन पर लजवन्ती
बदली झुक आयेगी !
देखो रानी, घन में उलझा
कितना चाँद उनींदा—

तन-मन मदिरा में स्नात्, नहीं प्रिय रूठो !
इतनी छोटी-सी बात, नहीं प्रिय रूठो !

सघन गगन में हँसी दामिनी,
दीप जले, शरमाये;
किन्तु अभी तक अधर बावरी—
प्यास नहीं पी पाये !

दूर नहीं जाओ, रानी,
जब नभ के भुजपाशों में—
है बद्ध मदिर बरसात, नहीं प्रिय रूठो !
इतनी छोटी-सी बात, नहीं प्रिय रूठो !

ऑलइण्डिया रेडियो दिल्ली से
प्रसारित—१९५२

और कब तक गीत यह चलता रहेगा

और कब तक गीत यह चलता रहेगा ?

थक गया हूँ, माँगता सीमा डगर की,
माँगता हूँ इति प्रतीक्षा के प्रहर की,
स्वप्न कब तक यों मुझे छलता रहेगा ?
और कब तक गीत यह चलता रहेगा ?

है मधुर नभ, चाँद हँसता है जहाँ पर,
है मधुर उर, प्यार बसता है जहाँ पर,
दर्द कब तक प्यार में पलता रहेगा ?
और कब तक गीत यह चलता रहेगा ?

दीप मेरा विश्व ने बुझते न देखा,
क्षीण होती जारही पर ज्योति रेखा;
दीप कब तक इस तरह जलता रहेगा ?
और कब तक गीत यह चलता रहेगा ?

जानती हो, पीर की भी एक हद है,
उमड़ लघु-सरि रूप ले लेती विशद है,
कौन से युग तक मिलन टलता रहेगा ?
और कब तक गीत यह चलता रहेगा ?

बेबसी का एक गीत

इन हारों से जीते कौन,
इन जीतों से हारे कौन ?

रोज़ रोज़ की बात, पुरानी, साफ़ है,
इनका हर गुनाह तो अब भी माफ़ है;
लेकिन जब आयें, तो कुछ तो बोल लें,—
ऐसे चुप रहना कैसा इंसाफ़ है ?

जो सुनकर बनते अनजान,
ऐसे मीत पुकारे कौन ?

बीते, रीते गीत पुराने हो चुके;
सौ-सौ दो सौ चाँद निछावर हो चुके;
बरस-बरस आँधी-पानी के वेग से—
टूटे सपने चरण-महावर धो चुके !

अलस भोर में जो ढल जाय,
ऐसा चाँद निहारे कौन ?

बने हुए ख़ानाबदोश जो घूमते,
ये बादल धरती, लहरों को चूमते;
मिलते हैं पल भर को, पूछो धूप से—
पर उसकी बाँहों में भी हैं झूमते !

जिन्हें डिगा दे लघु-बौछार,
ऐसे कूल-किनारे कौन ?

इन हारों से जीते कौन,
इन जीतों से हारे कौन ?

●

कैण्डी (लंका) में वर्षा की एक रात

सोने की लीकों-सी अनगिन परछाइयाँ
झिलमिल झिलमिल काँपती हैं नीली झील में;
हल्का पीला,

सोने के पानी-सा फिरा
बादरी लदा आकाश है।
धुँधले सपने-सी इस बरसाती रात में;
बिखरे बँगलों के माणिक-मणियों से जड़ीं
आकाश तले की ये मख़मली पहाड़ियाँ
ख़ामोश भींगतीं
अलस अमन्द फुहार में।

अँगड़ाई लेकर जाग उठे संगीत-सा
मीठी लगती धुँधली पावस की चाँदनी;
गलहार बना

मुंडेर कँगूरों से सजी
झुक-झाँक रही चुपके से नीली झील में,
हर लहर सुहागिन नाच रही सतरंगिनी
मदहोश किनारों के होठों को चूमती;

मेरी खिड़की के पार,
झील के तीर पर
बहकीं, महकीं-सी हरसिंगार की डालियाँ;
पानी के बीच उठाये सिर
लघुद्वीप के
ताड़ के कुंज से उलझ-सुलझ कर खेलती

ले बुँदियों भीगा तन,
मन ख़ुशबू से बसा
इस दूर देश में तेरी पावन याद-सी
उड़ती आती मदहोश अधीर बयार है!
ये बादल दल
पिछली खिड़की की राह से
चोरी-चोरी कुछ आँख-मिचौनी खेलते
मेरे कमरे में तैर रहे ख़ामोश से
जैसे मेरी जलती सिगरेट का धूम्र हो;
मैं नहीं प्रवासी यक्ष
रामगिरि तीर का
पर बड़ा अकेला-सा होता महसूस है;
किसको सूनी-सूनी-सी आँखें खोजतीं,
मालूम नहीं!
पर निश्चय कोई दूर है;
भारी-सी मन बेचैन उदास-उदास है;
लगता है—
जैसे इस बोझिल आकाश के
भीगे से स्वर मेरे मन पर छा जाँयगे—

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेष प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।

झाँकती है पीर मृदु मुस्कान में भी

झाँकती है पीर मृदु मुस्कान में भी !

दूर सतरंगे क्षितिज पर धुंध छायी,
मेघ को रानी न लेकिन मुस्कुरायी,
वेदना के स्वर छिपे हैं गान में भी।
झाँकती है पीर मृदु मुस्कान में भी!

एक चुम्बन में बिखर जाती जलन है,
किन्तु रह जाता सदा अतृप्त मन है,
टास है अंतर्निहित मधु-प्राण में भी!
झाँकती है पीर मृदु मुस्कान में भी !

प्यार दीपक के लिये बेशक सुलभ है,
किंतु व्याकुल-सा सदा फिरता शलभ है,
नेह जुड़ जाता कभी अनजान में भी !
झाँकती है पीर मृदु मुस्कान में भी !

घिर रहा है तम, कि दीपक जल रहा है,
हैं खुले दृग, किन्तु सपना चल रहा है,
दर्द जगता स्वप्न के अनुमान में भी !
झाँकती है पीर मृदु मुस्कान में भी !

●

उलझ गया मेरी पलकों में

उलझ गया मेरी पलकों में आकर चाँद किसी का !
झुक आयी तन्द्रिल नयनों में
सपनों की मदहोशी;
बिखर गयी नीलम के घर में
किरनों की ख़ामोशी;

बेसुधसी लहरों का माँसल
यौवन निखर उठा है,
छलक उठी तारों में गीतों की
मादक बेहोशी;
भींग रहा हूँ मैं बेसुध
ज्योत्स्ना के पागलपन में—
उतर गया प्राणों में चुपके से उन्माद किसी का !
उलझ गया मेरी पलकों में आकर चाँद किसी का !

निंदियारी पलकों में तिरते हैं
ख़ुमार के बादल;
आँखमिचौनी खेल रही हैं
रूप लहरियाँ चंचल;
पुलक सलज-सी अलसायी सुधि
की मदभरी जवानी—
बिखरी कजरारी अलकों-सी
नींद सलौनी पलपल !
चाँद सितारों की झिलमिल में
प्यार जगा प्राणों का—

डगर भूल रुक गया बटोही-सा आह्लाद किसी का !
उलझ गया मेरी पलकों में आकर चाँद किसी का !

किरणों की रिमझिम रिमझिम में
यह रसवन्ती चितवन—
भींग रही है तन्मय, भींग रहा
है मेरा मधुवन;

मैं विभोर अधमुँदे, शरबती
नयनों में खोजाऊँ,—
झुक झुक जाते अधर किसी के
अधरों की छाया बन !

मैं पगध्वनि पहचान रहा हूँ
नूपुर की रुनझुन में—
मुखर हो उठा मदिर क्वणन् में मधु-संवाद किसी का !
उलझ गया मेरी पलकों में आकर चाँद किसी का !

आलइण्डिया रेडियो, दिल्ली से प्रसारित
१९५३ ई०

आख़िर

नींद आख़िर क्यों नहीं आती ?
याद आती है कभी तेरी बहुत,

और,
मन में और भी कुछ ख़्याल आते हैं;
यह कि—
यह जो चाँद बदल से उलझ कर चल रहा है
अब न पहले की तरह-सा ख़ुशनुमा लगता,

और,
यह जो रात पहले बात करती थी बहुत-सी प्यार की
अब बहुत नाराज़-सी मालूम होती है;
है परेशानी बहुत मन में
गगन में भी बहुत मालूम होती है !
कुछ नहीं बदला कहीं पर भी,

—वही सब—
ये सितारे, चाँद, बादल,
रागिनी वाली हवायें,
ये किरण के दीप पहले की तरह ही
पास पीपल की चमकती पत्तियों पर
फुलझड़ी से झिलमिलाते हैं;
वही ख़ामोश गलियाँ, ऊँघती सड़कें,
सहमती बिजलियों की पाँत,
मध्यमवर्ग के नीचे मकानों की
दबी, सिमटी हुई-सी छाँह

जिसकी ओट में सब काम चलता है—
कि जो है पाप अथवा पुण्य !!—

ऐसे सृष्टि चलती है !
अभी तक क्रम वही सब चल रहा है,
कुछ नहीं बदला !
मगर कुछ खो गया है,
यह विषम व्यक्तित्व गति-लय खोजता है;
कुछ पहेली-सी अभी तक सामने है
ज्यों 'पिकासो' और 'सेल्वादोर दाली' के
अनेकों चित्र व्याख्या माँगते हैं;
प्रश्न चिह्नों की सजावट से घिरा जीवन !

शिकायत मैं न तुमसे कर रहा हूँ
सिर्फ़ इतना कह रहा था मैं
कि मुझको
नींद आख़िर क्यों नहीं आती ?

'समाज' मासिक दिल्ली
फ़रवरी '५५

अब याद नहीं आती

है नहीं पुरानी बात बहुत, लेकिन
सच कहता हूँ, अब याद नहीं आती !

वैसे ये बादल काफ़ी नटखट हैं,
अपनी शोख़ी से बाज़ नहीं आते;
कुछ कुछ मन करता उन्हें बुलाने को
जो चले गये नाराज़, नहीं आते !

कहने को कोई बात नहीं बाक़ी,
जो लेना देना था, सब पूरा है !
पर कभी कभी ऐसा भी लगता है
ज्यों कोई बीता गीत अधूरा है !

मुझको न शिकायत जाने वालों से,
उनका स्वागत, जो आने वाले हैं—
पर मन के किसी अकेले कोने में
कोई छवि है, जो भूल नहीं पाती !
है नहीं पुरानी बात बहुत, लेकिन
सच कहता हूँ, अब याद नहीं आती !

जो गीतों में गूँजीं, मल्हारें थीं,
जो नयनों ने बरसाया, सावन था !
मख़मूर बादरी में जो डूब गया
वह चाँद बहुत कुछ परिचित, पावन था !

साँसों के गीत सितारों से बोले,
'कुछ बात करें, अब आधी रात रही !'
तारों ने ढलते चंदा को देखा,
गीतों के दृग में आधी बात रही !

किसके होते हैं मीत सावनी घन,
बरसात सदा ही प्यासी रहती है—
पर कभी चुम्बनों सी मीठी बरखा
मेरे अधरों की कोरें छू जाती !
है नहीं पुरानी बात बहुत, लेकिन
सच कहता हूँ, अब याद नहीं आती ।

आलइण्डिया रेडियो, दिल्ली से
प्रसारित—'५४

मेरे प्राणों के मीत

मेरे प्राणों के गीत मुझी से रूठ गये !

मेरे नयनों की सीमा में सिमटे आये
कितने सूने, अनजाने कूल-किनारे थे,
लेकिन मन से मजबूर, नयन से दूर बहुत
भूले गीतों के संगी चाँद सितारे थे !

मुझको धरती-नभ की हलचल से क्या मतलब
जब मन बेबस-सा हारा-हारा रहता है ?
कितने विश्वास मिले, बोलो, पर कौन कभी
जीवन भर मेरा और तुम्हारा रहता है ?

जाने वाले जायें,
रोकूँ कैसे, लेकिन—
सुख दुख के सङ्गी मीत अभी से छूट गये !
मेरे प्राणों के गीत मुझी से रूठ गये !

तट के सूखे अधरों पर भूले-भटके से
अब भी लहरों के मीठे चुम्बन अङ्कित हैं,
लेकिन कल के छल की भ्रम-मय परछाईं सी
जल के भींगे लहरिल प्राणों में कम्पित हैं !

कितने कितने इतिहास नये बनते, मिटते,
जिनकी केवल अब पथ में शेष निशानी है;
जो याद रहे कुछ भूला-सा, वह जीवन है,
जो रहे नशा बन, केवल वही जवानी है !

जीवन गा गा कर काटा
पर अंतिम लय पर—
गीतों के संगी तार अचानक टूट गये !
मेरे प्राणों के मीत मुझी से रूठ गये !

कितना विश्वास लिये पंछी जब लौटा था
नीरव संध्या में अपने रैन बसेरे को;
रह गये नयन सूने, अम्बर ख़ामोश रहा,
वह रहा खोजता निशि भर नये सबेरे को !

वह थका, न पर पा सका चाँद की छाँह कहीं,
उड़ उड़ कर उलझा किरनों की मुस्कानों में;
खो गयीं कहीं सारी नीलम की सीमायें,
वह भटका-भरमाया नभ के वीरानों में,
क्या होगा सूनेपन से
भरी अमरता का ?—
जब मिलन पलों के ही अमृत - घट फूट गये !
मेरे प्राणों के गीत मुझी से रूठ गये !

आल इण्डिया रेडियो दिल्ली से
प्रसारित—१९५३

कौन जीता और हारा कौन है ?

क्या करोगे जानकर तुम मीत मेरे,
कौन जीता और हारा कौन है ?

रात की ख़ामोश आँखों की कहानी
है बहुत गीली, बहुत ही दुख भरी है;
जब व्यथा के सिन्धु-से नीले गगन में
चाँदनी की काँपती चलती तरी है !

तीर पर आवाज़ दे देकर बटोही
लौट आया, पर न लहरें बोलतीं हैं;
प्यार तो तट से नहीं, मझधार से था
किंतु वह भी तो बाँहें न खोलती है !

क्या करूँ जब ख़ुद न माँझी जान पाया।
हैं कहाँ लहरें, किनारा कौन है ?
क्या करोगे जान कर तुम मीत मेरे,
कौन जीता और हारा कौन है ?

बुझ गयी मासूम-सी बाती पवन में
दीप तो विश्वास के बल जल रहा था;
क्या करूँ तूफ़ान को मैं दोष देकर
दीप का ख़ुद प्यार ही जब छल रहा था !

सुन रहा था मुग्ध-सा मैं, किंतु कोई
गीत गा कर मौन सहसा हो गया है;
दीपकों-सा छोड़ कर ज्यों तारकों को
चाँद उन्मन-सा उनींदा सो गया है !

किन्तु निशि कब जान पायी कौन दीपक,
भोर का बुझता सितारा कौन है ?
क्या करोगे जान कर तुम मीत मेरे
कौन जीता और हारा कौन है ?

मैं पला हूँ विश्व की मजबूरियों में
ज़िन्दगी के बंधनों को जानता हूँ;
प्यार है मुझको अधिक प्रिय मृत्यु से भी
साँस की सीमा मगर पहचानता हूँ !

हर लहर निस्तब्ध-सी सुनती रही है
सिंधु ने कितने समर्पण गीत गाये;
किंतु जीवन-मृत्यु के दोनों किनारे
प्यार की गहराइयाँ कब माप पाये ?

सब मुसाफ़िर हैं, नहीं अब प्रश्न पूछो,
कौन है मेरा, तुम्हारा कौन है ?
क्या करोगे जान कर तुम मीत मेरे
कौन जीता और हारा कौन है ?

आल इण्डिया रेडियो दिल्ली से
प्रसारित—१९५३

चुक गया है स्नेह मेरा प्यार हारा

चुक नया है स्नेह, मेरा प्यार हारा !

स्पर्श करती है लहर दोनों किनारे,
जगमगाती है निशा लाखों सितारे;
किन्तु उसका प्यार किससे बँध सका है ?—
जीतती है, बोल, वह किसके सहारे ?
खोज पाया मैं नहीं
उत्तर इसी का—
ज़िन्दगी में आज पहली बार हारा !
चुक गया है स्नेह, मेरा प्यार हारा !

हारता है प्यार मेरा, जानता हूँ,
मैं स्वयं अपनी हदें पहचानता हूँ ;
आज तक तो जीत के सपने सजाये—
किन्तु अपनी हार भी तो मानता हूँ !
जीत का तुमको मिले
हक़, इसलिए ही—
आज अपने प्यार का अधिकार हारा !
चुक गया है स्नेह, मेरा प्यार हारा !

स्तब्ध आधी रात, मैं दीपक जलाये,
गा रहा हूँ नींद पलकों में छिपाये;
दूर मुझसे चाँद, अम्बर के सितारे—
कौन मन में चाँदनी बन झिलमिलाये ?

शून्य में लय नूपुरों की
मदिर रुनझुन—

शेष अपने गीत का का आधार हारा !
चुक गया है स्नेह, मेरा प्यार हारा !

नीरव मेरे गीत

नीरव मेरे गीत जैसे नभ में ढलता चाँद !

निशि के पिछले याम बेबस सपने-से
आते, होते शेष,—सूना अम्बर, सूने प्राण !
सब बनते मेहमान, मन के अपने-से,
छलते बारम्बार, पल में बन जाते अनजान !

हरसिंगार के फूल नीलम अंचल भर
है बटोरती रात—कितनी मीठी-सी, मदहोश !
लेकिन सहमे दीप पल-छिन जल-जल कर
थक जाते हर प्रात, बुझकर हो जाते ख़ामोश !
किस आँचल की ओट में
पल भर छिपकर—
बरसे मेरी आँख-मन का मेघों-सा अवसाद ?
नीरव मेरे गीत जैसे नभ में ढलता चाँद !

कितनी बोझिल पीर, गीली पलकों-सी,
हम तुम कितनी दूर—धरती छू न सकी आकाश !
बीती पगली रैन, काली अलकों-सी,
छूट गये अनजान, पल भर कस कर ही भुजपाश !

गहन व्यथा में बद्ध गायन तारों के,
शबनम की हर साँस बुझते दीपक-सी बेचन !
किन्तु न लौटे आज पल मनुहारों के,
भारी-भारी प्राण जैसे बरसे निशि के नैन !

किसको जाऊँ भूल,
किसकी सुधि खोजूं ?

कितनी गहरी आज तेरी बिखरी बिखरी याद !
नीरव मेरे गीत जैसे नभ में ढलता चाँद !

कौन मेरे दर्द को पहचानता है ?

कौन मेरे दर्द को पहचानता है ?

रुक गये आँसू दृगों के ही सहारे,
मूँद दृग सोते सजल सपने तुम्हारे,
किन्तु अंतर्द्वन्द्व कोई ठानता है !
कौन मेरे दर्द को पहचानता है ?

बुन रही राका मधुर सपने सजीले
लिख रही है चुम्बनों के गीत गीले;
चाँद भी ले किन न बंधन मानता है !
कौन मेरे दर्द को पहचानता है ?

हैं खड़े वे एक धारा के सहारे—
पर न मिल पाये कभी भी दो किनारे
मिल सकेंगे क्या ? न कोई जानता है !
कौन मेरे दर्द को पहचानता है ?

मैं अकेला हूँ, अकेला पथ पड़ा है,
कौन छिप मम-राह को रोके खड़ा है ?
तार अस्त-व्यस्त कोई तानता है !
कौन मेरे दर्द को पहचानता है ?

'संगम' प्रयाग
१९४८

सुन पाओ मेरे गीत

सुन पाओ मेरे गीत कहीं भूले-भटके
तो गा लेना !

कुछ मैंने सोचा, कुछ तुमने सोचा,
कुछ कही-अनकही मन की बात रही;
कुछ पीर सावनी बदरी बन बरसी,
कुछ याद नयन की बन बरसात रही !

यदि बहकी-बहकी लहरों में मन के
ये कूल-किनारे डूब नहीं जाते,
तो इतनी गहरी पीर भरे स्वर से
शायद हम अपने गीत नहीं गाते !

जो रात बात भर में ढल जाती थी,
अब नहीं अकेले काटे कटती है—

कर पाओ यदि दो बात, सितारों से ही—
मन भरमा लेना !
सुन पाओ मेरे गीत कहीं भूले-भटके
तो गा लेना !

संगीत भरे अधरों की अरुणाई
कुछ याद रही, कुछ भूल गयी-सी है;
शर्मीली-सी शबनम की आँखों में
तेरी सुधि की पहचान नयी-सी है !

भटके-भरमे-से नयन सितारों के
नभ की कितनी ख़ामोश निगाहें हैं !
गोरी-सी माँसल सोन-जुन्हाई में
सूनी-सूनी सी मेरी बाँहें हैं !

यह चाँद कि जो पच्छिम में ढलता है
किरनों के फूल गगन में बिखराकर—

ले एक किरन मासूम पाँखुरी-सी तुम
दीप जला लेना !
सुन पाओ मेरे गीत कहीं भूले-भटके
तो गा लेना !

आलइण्डिया रेडियो दिल्ली से
प्रसारित—'५४

मैंने चाँद डूबते देखा

संध्या के आँचल के पीछे
मधुर-मधुर नूपुर की ध्वनि पर
नर्त्तन करती आई छम्-छम्
रुनझुन-रुनझुन कोई बाला

मैंने देखा—

सिमट लाज से
शरमायी-सी, मुस्काती-सी
यामा ने सकुचाकर अपना
झीना-झीना घूँघट खोला;

मैंने देखा—

जगमग जगमग
तारों की दीपावलियों ने
अपनी निशा राजरानी की
अनगिनती आरती उतारी!

दूर क्षितिज के वातायन से—

मैंने देखा—

चाँद हँसा था
अपनी रानी के सिंगार पर,
सहसा ही दोनों के अरुणिम,
मदिर नयन मिल एक हो गये;
चाँद बढ़ा नभ के आँगन में
बाँह खोल अलसायी निशि को
भरने अपने बाहुपाश में

मैंने देखा—

प्रहर निशा के शेष हो रहे धीरे धीरे,
जाँहें खुलने लगीं चाँद की उन्मन-उन्मन,
निशि के भारी पलक झर उठे
बन कर शबनम के लघु-लघु कण !
फीका-फीका मुरझाया-सा
निशि के चुम्बन को सिहरन से
कंपित, प्यासा, श्रांत पथिक-सा
पश्चिम के दूरस्थ क्षितिज पर
मैंने चाँद डूबते देखा !

× × ×

साँझ हुई
पेड़ों के झुरमुट में उतरा काला अंधियारा
धरती के सूने आँगन में
गहन तिमिर की भीति बेधकर

मैंने देखा—

दीप जला था;
बड़ी बड़ी तम की लहरों पर एक अकेली
बहती जाती ज्यों नन्हीं प्रकाश की नौका !
इस झुरमुट में छिपी हुई-सी कब्र पुरानी
ले अपना इतिहास कसकता—
कौन सिसकता चुपके-चुपके नित्य रात में ?
कौन जलाने आता इस टूटे मज़ार पर
रोज़ एक नन्हा-सा दीपक ?

मैंने देखा—

तेज हवा में दीपशिखा झोंके लेती थी,
क्षण में जल कर
क्षण में बुझकर
थाम रही थी तम का दामन !

मैंने देखा—

उस समाधि पर
बिखर गई मुस्कान अचानक
नन्हें दीपक के प्रकाश में,
दीर्घ प्रतीक्षा में तप-तपकर
विकल शलभ का प्यार जग उठा;
अपना सारा प्यार समेटे
चला बढ़ा अभिनन्दन करने
किन्तु नहीं अभिसार हो सका।

मैंने देखा—

दीप दर्प से
अट्टहास कर उठा थिरक कर
बाँध न पाया शलभ दीप को
क्षणभर अपने बाहु पशु में,
शेष होगया उसका छोटा
अनजाना बेगाना जीवन—
एक निठुर दीपक के ऊपर।

मैंने देखा—

नभ के तारे सिसक सिसक कर बुझते जाते;
उस नन्हें समाधि दीपक का

दो पल का नन्हा सा जीवन
आ टकराया अपने तट से !
शेष रह गयी—
मैंने देखा—
क्षीण एक उजली-सी रेखा;
गहन अँधेरे की चादर पर;
भींग गयों
शारदा यामिनी की अलसित, कजरारी आँखें,
चीख उठी वह क़ब्र पुरानी,
गूँज उठा वह सूना झुरमुट,
पल पल डूब रही थी नौका
गहन अँधेरे की लहरों में
शेष हुई मुस्कान थिरकती;
अपनी इन भींगी आँखों से—
मैंने दीपक बुझते देखा !

'नवयुग' साप्ताहिक
दिल्ली—'४६

आज एक याद

आज एक याद अश्रु बन ढुलक पड़ी !

चाँद सो रहा, पड़ी सुषुप्त चाँदनी;
गीत शेष हैं, हुई विमूक रागिनी;
शेष प्यार का प्रतीक जोकि जल रहा—
दीप वह बुझा, मगर घटी न यामिनी !

शून्य प्राण-मध्य एक छाँह झाँकती;
किन्तु आह दर्द का न मूल्य आँकती;
वेदना सदैव प्राण में जगी रहा—
दे सकी न प्यार, किन्तु प्यार माँगती !

एकटक नयन रहे, न पर पलक जुड़ी !
आज एक याद अश्रु बन ढुलक पड़ी !

भीगते रहे सुदूर याद में नयन;
पीर नित्य भर रहा अतीत स्वप्न बन;
प्राण में न किन्तु चाँद मुस्कुरा सका—
वेदना कचोटती रही सदैव मन !

आज प्राण क्षुब्ध और मन उदास है;
गीत में प्रगाढ़ पीर का निवास है;
बोल दे निशा, कि प्यार मैं किसे करूँ ?—
अर्घ्य दूं किसे, कि देवता न पास है !

था न मैं तटस्थ, वेदना छलक पड़ी
आज एक याद अश्रु बन ढुलक पड़ी !

आलइण्डिया रेडियो, दिल्ली से
प्रसारित—'४८

पूनम की रात

पूनम की रात लिखे चाँदी के गीत री!

चन्दा की बाँहों में लाजभरी चाँदनी
प्यार की झकोर भरे री !
नीलम के घूँघट में गोरी गोरी रात हँसे,
झिलमिल सिंगार करे री !
प्रानों में पीर
कसमसाय, किन्तु—
दूर देस आज बसे प्रानों के मीत री !
पूनम की रात लिखे चाँदी के गीत री !

किरनों की झलमल सी झालर लहराये
बावरी बयार चले री !
नैन के झरोखों में युग युग से मन्द मन्द
सुधियों के दीप जले री !
प्रानों की धड़कन में
प्यार जगा, किन्तु—
मीत भूल गये, कौन नयी आज रीत री !
पूनम की रात लिखे चाँदी के गीत री !

उजले उजले आँगन में नाचे रैन बावरी,
तारक मंजीर बजे री !
कजरारी आँखों की अलसाई कोरों में
सपनों के चित्र सजे री !

निदियारी पलकों में
याद बसी, किन्तु—
हारी अनजान प्यार भरी जीत री !
पूनम की रात लिखे चाँदी के गीत री ।

आलइण्डिया रेडियो, दिल्ली से
प्रसारित—'५३

शिशिर के मेघ

छाये ये शिशिर के मेघ
उन्मन-से, उनींदे से !

उजली धूप के नभ और
धरती पर पहरूए-से
आये हैं समेटे एक
ठिठुरन श्वेत दामन में !
उड़ती है खगों की पाँत
छूने नीलिमा का दिल,
उलझे किन्तु उनके पंख
इनके रेशमी तन में !
पाहुन बन किसी परदेश से
आये हमारे घर,
उलझेंगे नहीं पर आज
हरगिज़ प्यार-बंधन में !

ढलती धूप के संगीत में
बहते हुए पल-पल,
गाते जा रहे पथभ्रान्त
मधु-बौछार भींगे-से !
छाये ये शिशिर के मेघ
उन्मन-से उनींदे-से !

भूले हो गगन की राह
धरती पर उतर आओ,

बाँधेगी किसी की छवि
तुम्हें भी प्यार के छल में !
मैं भी व्योम की गहराइयों में
थक चुका उड़कर,
खोजा है बसेरा, रे
किसी के स्नेह आँचल में !
संध्या की उतरती छाँह
सिमटे दिवस के तन पर,
झुकते ज्यों परस्पर होठ
पगले मिलन के पल में !
दूर नाप देखो तुम,
नहीं है अधिक भू-नभ में
लगते हो बहुत ही पास
मुझको, मेघ, नीचे से !
छाये ये शिशिर के मेघ
उन्मन-से, उनींदे-से !

'जन-साहित्य—सं० १
जुलाई-अगस्त—'५४

कितनी निष्ठुर है, चाँद, चाँदनी तेरी

हार गया है प्यार गगन का
किरणों का छल जीता,
युग युग सत्य जिसे समझा था
वह सपना सा बीता,
लहर बुलाती रही रात भर,
पर न सुनीं मनुहारें,
कितनी निष्ठुर है, चाँद, चाँदनी तेरी,

रात रात भर होड़ लगा
तारों से दीप जला था,
पर वीरान गगन में लुकछिप
रूठा चाँद चला था,
ज्योति भोर की कोर छू गई,
लेकिन बीन न लौटी-
कितनी निष्ठुर है, दीप, यामिनी तेरी,
कितनी निष्ठुर है, चाँद, चाँदनी तेरी,

रीझ गई दुनिया गति-लय पर
यह विश्वास घना था,
पर छाया सा शेष हुआ
जो पल भर का सपना था,
गूँज गूँज में पीर बस गई,
लेकिन बीन न जागी,
कितनी निष्ठुर है, गीत, रागिनी तेरी,
कितनी निष्ठुर है, चाँद, चाँदनी तेरी,

मन की व्यथा समेटे नभ के
नयन घिरे पावस में,
रहा भीगता किरणों का घर
सुधियों से मधुरस में,

राग भटकता रहा घनों में,
लेकिन पथ न बताया,
कितनी निष्ठुर है, मेघ, दामिनी तेरी,
कितनी निष्ठुर है, चाँद, चाँदनी तेरी !

'सरिता' दिल्ली
मार्च १९५३ ई०

याद के पल

मैं विमुग्ध सा सुनील आसमान को
देखता रहा सजल नयन पसार कर !

जा रही विहंग-माल दूर नीड़ को
प्यार की अनंत रागिनी बिखेरती !
साँझ को कि जो उतर रही सलज्ज-सी
मेघमाल पाश में अजान घेरती !

एक वक्र धूम्र-रेख आसमान में
मौन-सी निशा समेट कर थमी हुई !
एक तारिका उदास अश्रुविन्दु-सी
नील व्योम के कपोल पर जमी हुई !

मत लजा नयीवधू-सदृश, नयी शमा,
सो गया थका दिवस तुझे पुकार कर !
मैं विमुग्ध-सा सुनील आसमान को
देखता रहा सजल नयन पसार कर !

नींद की तिमिरमयी लहर उठी, घिरी
मेघ-सी सघन प्रगाढ़, स्वप्न-सृष्टिमें !
किन्तु एक याद छवि बनी उलझ गयी
रह गयी सिमट सजल, सुदूर दृष्टिमें !

मैं विवश, कि कर बढ़ा न छू सका कभी
छाँह वह कि जो मुझे पुकारती रही;
प्यास से भरे मदिर नयन लिये हुए
वासनामयी निशा निहारती रही !

किंतु अब न ग़म, कि बीत जो गयी, गयी;—
आज रात आ रही नया सिंगार कर!
मैं विमुग्ध-सा सुनील आसमान को
देखता रहा सजल नयन पसार कर!

थक गये अनेक गीत गूँज गूँज कर,
सो गयीं अनेक रागिनी सितार में;
किन्तु जागते रहे नखत-नयन विकल
मौन, निर्निमेष आज इंतज़ार में!

क्षीण यह प्रकाशरेख रूठ-सी चली,
चाहिए न दीप शेष राह के लिये;
पुण्य के लिये महत्त्वपूर्ण ज्योति है,
अंधकार ठीक है गुनाह के लिये!
आँख बन्द क्यों करूँ, कि चाँद-चाँदनी
जबकि पाशबद्ध हैं विभोर, प्यार कर!
मैं विमुग्ध-सा सुनील आसमान को
देखता रहा सजल नयन पसार कर!

●

स्वप्न मेरे गीत बनकर सत्य हो जाओ

स्वप्न मेरे, गीत बन कर सत्य हो जाओ !

राग वीणा पर उतर साकार हो जाता;
दीप तम में उलझ एकाकार हो जाता;
चूम लूँ किसके अधर इस प्यास के पल में ?—
प्यार प्राणों में उतर आधार हो जाता !

जाग रे पंछी, प्रभाती
गा रहा हूँ मैं—
चाँद, नभ की नीलिमा में मौन सो जाओ !
स्वप्न मेरे, गीत बन कर सत्य हो जाओ !

जब उलझती प्यार की तरणी हिलोरों में;
जब कि होते गीत लय उन्मत्त रोरों में;
नित्य हो जातीं तभी मेरी पलक बोझिल—
मीत, तेरी याद की पागल झकोरों में !

सिन्धु को अँगड़ाइयाँ
उन्मुक्त लेने दो—
आज, माँझी, लहर में मदहोश खो जाओ !
स्वप्न मेरे गीत बन कर सत्य हो जाओ !

भोर, मत रूठो कि मैं दीपक बुझाता हूँ,
चित्र किरणों के न अब नभ में सजाता हूँ;
नींद मेरी ले गये तुम, याद भी लेलो,—
प्यार मत रूठो, न अब तुमको बुलाता हूँ !

अब न गाऊँगा
कि मेरे गीत मत रूठो—
रागिनी के घन, अधर मेरे भिगो जाओ!
स्वप्न मेरे, गीत बन कर सत्य हो जाओ!

नया जीवन
'५४

चुम्बनों में प्यास भी है, तृप्ति भी है

चुम्बनों में प्यास भी है, तृप्ति भी है !

जाग कर भी दृग न खुल पाते किसी के,
बीत कर सपने न धुल पाते किसी के,
प्यार में वैराग्य भी है, लिप्ति भी है !
चुम्बनों में प्यास भी है, तृप्ति भी है !

भूल में भी याद ही अंतर्निहित है,
वेदना में तुष्टि भी रहती अमित है,
साधना में मौन है, विज्ञप्ति भी है !
चुम्बनों में प्यास भी है, तृप्ति भी है !

इन नशीले बादलों के घूँघटों में,
इन धड़कते प्राण की अकुलाहटों में,
है जलन की पीर, मधु-विक्षिप्ति भी है !
चुम्बनों में प्यास भी है, तृप्ति भी है !

बँध नहीं पाती कभी सीमा नयन की,
मिल नहीं पाती कभी खुद थाह मन की,
दर्द में है दीर्घता, संक्षिप्ति भी है !
चुम्बनों में प्यास भी है, तृप्ति भी है !

नया क़दम, मासिक
दिल्ली '४८

तुम वहीं मिलीं

तुम वहीं मिलीं जहाँ न कल्पना गयी !

तुम मुझे मिलीं अशान्त-से समीर में,
तुम मिलीं चकोर की अशेष पीर में,
सिंधु-वक्ष पर तुम्हें पुकारता फिरा,—
तुम मुझे मिलीं अधीर नेत्र-नीर में !

तुम छिपीं प्रदीप में, सिसक पड़ा शलभ;
तुम छिपीं निशीथ में, विकल सुनील नभ !
खोज तार-तार-मध्य हार मैं गया—
प्राण, तुम अधीर गीत-गीत में सुलभ !

तुम विहँस पड़ीं, न व्यर्थ अर्चना गयी !
तुम वहीं मिलीं, जहाँ न कल्पना गयी !

साध शेष रह गयी, नयन न मिल सके,
मैं चला, रुका, मगर न होठ हिल सके;
दर्द रह गया, जलन रही, तड़प रही,—
रह गये थमे, न अश्रु भी निकल सके !

तुम मुझे मिलीं, कि हार जीत हो गयी !
तुम मुझे मिलीं, कि पीर गीत हो गयी ।
निष्ठुरा निशा कि जो तड़प जगा रही—
तुम मिलीं कि वह पुनीत-शीत हो गयी !

तुम मुझे मिलीं नवीन प्रेरणामयी !
तुम वहीं मिलीं जहाँ न कल्पना गयी !

ग्राल इण्डिया रेडियो दिल्ली से
प्रसारित—१९४८

●

प्यार मेरा कौन-सा आवास खोजे

प्यार मेरा कौन-सा आवास खोजे ?

थम गया है गीत नभ में रवि-किरण का
नैश कुंतल-सी घिरी मेरी उदासी !
सामने का नीड़ है ख़ामोश बिल्कुल,
लौट कर आया नहीं अब तक प्रवासी !

चूमता है दूर पूरब के क्षितिज पर
चाँद लुकछिप कर गगन की नीलिमा को;
झाँक बादल के रजत वातायनों से
प्यार देती ज्योत्स्निका पागल शमा को !

लौट परदेसी मुसाफ़िर,
याद तेरी—
इस विजन में कौन-सा उल्लास खोजे ?
प्यार मेरा कौन-सा आवास खोजे ?

नींद का पंछी सितारों की डगर से
आ रुका मेरी पलक की छाँह पाकर !
छोड़ कर केवल तुम्हारी याद, रानी,
ले गया मेरे मधुर सपने चुराकर !

झिलमिलाती रश्मियों की लहरियों पर
बह रहे मेरे रुपहले गान, रानी ;
मैं खड़ा हूँ दीप ले तट पर अकेला ,
उठ रहा उस पार से तूफ़ान, रानी !

प्रबल झंझा के झकोरों में
उलझ कर—
दीप मेरा कौन-सा विश्वास खोजे ?
प्यार मेरा कौन-सा आवास खोजे ?

वह उनींदा चाँद ढलता जा रहा है,
सिन्धु-से गंभीर नीलाकाश में, री !
जाग मेरी प्रेरणाओं की प्रभाती,
बाँध लूँ तुझको स्वरों के पाश में, री !

व्योम की पलकें झुकीं, लौ काँपती है,
दीप, अन्तिम बार लेलूँ प्यार तेरा !
तुम सिमट जाओ भुजाओं में, प्रवासिनि,
झुरमुटों के पार्श्व में हँसता सबेरा !

भींगता निशि भर रहा
जो चुम्बनों में—
चाँद मेरा, कौन-सी मधु-प्यास खोजे ?
प्यार मेरा, कौन-सा आवास खोजे ?

आल इण्डिया रेडियो दिल्ली से
प्रसारित—१९५३

लहर और चाँद

लहर ने बड़ी आस से दृग उठाये—
'नहीं चाँद आये ?'

बहुत की प्रतीक्षा,
डगर जोहते बावरे नैन हारे,
नहीं कुछ बताते मगर ये सितारे;—
कठिन है परीक्षा !

थके गीत मेरे,
कई बार मनुहार की, गान गाये,
खुलीं बाँह, पर तुम न आये, न आये,—
निठुर मीत मेरे !

नहीं द्वार खोले !
तनिक मुस्कुराकर निशा चुप खड़ी है,
नहीं लौटती बीतती जो घड़ी है,
मगर तुम न बोले !

विफल रास सारा—
गगन में किरन के कन्हैया न आये,
कहो कौन गाये ?
लहर ने बड़ी आस से दृग उठाये—
'नहीं चाँद आये ?'

तुम्हें याद होगा—
किरन की की तरी जब तुम्हें पास लाई,
बड़े नाज़ से मैं जगी, मुस्कराई,—
कहा—'चाँद होगा !'

कहा फिर—'रुको तुम !'
मगर तुम न माने, भुजा पाश घेरे,
अछूते न छोड़े सजल गाल मेरे,
बड़े ढीठ हो तुम !

रुके तुम न तो भी,
विवश मैं, नहीं खुल सकीं ये भुजा रे !
कहा स्वप्न-वत् लोक-सुध-बुध बिसारे—
'चलोजी, हटो भी !'

'कभी भूल कर भी—
नहीं प्रीत परदेसियों से लगाये,
न मन में रमाये !'
लहर ने बड़ी आस से दृग उठाये—
'नहीं चाँद आये !'

हँसी सृष्टि सारी,
नयन में नयन भर चिबुक जो उठाई,
अधर पर अधर झुक गये, मैं लजाई,—
कहा—'मैं तुम्हारी !'

गगन मुस्कुराया;
उलझ कर मदिर शरबती चितवनों में
तुम्हीं कह उठे बाँध भुज-बंधनों में—
'बड़ा प्यार आया !'

'कहो कब मिलेंगे ?'
मगर बुझ चले दीप तन्द्रिल गगन के,
बिछुड़े तुम चले, चाँद मेरे नयन के,
कहा—'कल मिलेंगे !'

मगर सब भरम था—
नयन के गगन में सघन मेघ छाये,
बटोही न आये !'
लहर ने बड़ी आस से दृग उठाये—
'नहीं चाँद आये !'

पलक जुड़ न पायी,
हुई नींद बैरिन, न रमती नयन में,
थके दृग, न झाँके मगर तुम किरन में,
बड़ी याद आयी !

गये बीत सपने,
गगन-वक्ष पर छोड़ पगचिह्न नीले
उनींदी निशा ढल गयी रागिनी ले,
मगर तुम न अपने !

उषा गीत गाती।
चली व्योम के छू अधर शोख़ शबनम';
इधर सुन रही मैं लिये युग-नयन नम—
विहग की प्रभाती!

हुई साध निष्फल—
दृगों में मिलन याम ही बँध न पाये!
हुए तुम पराये!
लहर ने बड़ी आस से दृग उठाये,—
'नहीं चाँद आये?'

'रानी' कलकत्ता
१९५४ई०

हो गयीं तुम दूर चुपके से,सलोनी

हो गयीं तुम दूर चुपके से, सलोनी,
जोहता ही मैं रहा सूनी डगर !

ग़म नहीं होता, कि आता चाँद नभ में,
डूब जाता तारकों का प्यार लेकर !
ग़म नहीं होता, कि आते अश्रु दृग में,
ढुलक जाते वेदना का क्षार लेकर !

ग़म नहीं होता, कि कट जातीं अकेले
रात की सोयी हुई ख़ामोश घड़ियाँ;
ग़म नहीं होता, भिंगोतीं जब गगन को
चाँदनी के चुम्बनों की मदिर झड़ियाँ !

काँप जाता किंतु मन का दीप, सूने
बीत जाते जब प्रतीक्षा के प्रहर !
हो गयीं तुम दूर चुपके से, सलोनी,
जोहता ही मैं रहा सूनी डगर !

कौन से युग से पड़ी हैं, बाँह सूनी,
पर नहीं मुझको शिकायत बंधनों से;
जल रहे मेरे अधर कब से न जाने,
पर मुझे शिकवा न सावन के घनों से !

आज मुझसे दूर तुम, मेरी हिमानी,
पर न इसमें दोष पथ की दूरियों का;
क्योंकि कोई बंधनों से जोड़ नाता
काट ही सकता न मग मजबूरियों का!

भींग जाते किन्तु दृग, जब नींद का छल
लूट लेता मदिर सपनों का नगर!
हो गयीं तुम दूर चुपके से सलोनी,
जोहता ही मैं रहा सूनी डगर!

इस अमर उन्माद की मादक घड़ी में
माँगता हूँ मैं न मदिरा चाँदनी से;
कौन जादू मुझे छलना चाहता है
उभर कर मधु-यामिनी की रागिनी से?

मदभरी यह रात मीठी मुस्कुरा कर
जब गगन भुज-बंधनों में सिमट जाती;
तब नहीं मुझको शिकायत है तृषा से
क्यों अधर पर चुम्बनों के गीत गाती!

किंतु भारी प्राण हो उठते तभी, जब
निशि भिंगोती ओस से मेरे अधर!
हो गयीं तुम दूर चुपके से सलोनी,
जोहता ही मैं रहा सूनी डगर!

'नवयुग'
दिल्ली—'५०

गीत में छाया किसी के प्यार की है

गीत में छाया किसी के प्यार की है !

जब लहर पर चाँद की छाया उतरती,
मौन सरि के प्राण की वीणा सिहरती,
हर लहर में गूँज उसके तार की है !
गीत में छाया किसी के प्यार की है !

रागिनी बजती व्यथायें पाल लय में,
दीप जलता है जलन लेकर हृदय में,
ज्योति में रेखा शलभ की हार की है !
गीत में छाया किसी के प्यार की है !

प्राण की पीड़ा बिखर, बन आज सरगम,
अश्रु बन ज्यों झर पड़ी मासूम शबनम,
याचना मेरी प्रबल अधिकार की है !
गीत में छाया किसी के प्यार की है !

माँगता है कौन ? मैं पीड़ा लुटाता
चल रहा पगचिह्न पीछे के मिटाता,
साध प्राणों में छिपी मनुहार की है !
गीत में छाया किसी के प्यार की है !

●

आल इण्डिया रेडियो, दिल्ली
से प्रसारित—१९५२
५

अंतर्द्वन्द्व

धूप भी है, छाँह भी
इसलिए तपना पड़ेगा
चिलचिलाती धूप में
यदि राह में चलना अपेक्षित
और—
मंज़िल तक पहुँचना लक्ष्य है केवल
हमारा !
हार मानूँगा नहीं मैं
राह के इन कङ्कड़ों से
जो कि केवल
योग्य है पद चूमने के,
राह रोकेंगे—हमारी ?
हस्तियाँ ही क्या कि जो यह
मार्ग को ढँक दें
न बढ़ने दें मुझे !

सिंधु-मंथन-सा विकट
संघर्ष मेरी ज़िन्दगी का सामने है,
किन्तु यह आशा
कि—
अमृत ही मिलेगा,
क्यों न उसका पान कर
अमरत्व मैं पा लूँ अकेला !
सत्य है यह

मैं अमरता जीत लूँगा,
किन्तु मेरी साधना की
क्या यही सीमा बनेगी ?
—'सिर्फ अमृत ही मिलेगा'—
यह ग़लत है !—
जिन्दगी की जुस्तजू में
ठोकरें खानी पड़ेंगी
और जो उत्पन्न होवेंगी विषमता,
जो धुआँ-सा कुछ समय को
ढाँक लेगा
ज़िन्दगी की लालिमा को
वह हलाहल की तरह
मुझको मिलेगा !

प्रश्न अब यह सामने है—
मैं किसे सप्यार अपना लूँ
लगा लूँ निज अधर से
छोड़कर सङ्कोच सारा !
हैं मिले
दोनों मुझे—अमृत-हलाहल—
विश्व से छीनूँ अमरता
और—
निज स्वामित्व का
अधिकार मानव पर जताऊँ
किंतु—
मानव की सभी तो शेष हैं
कमज़ोरियाँ मुझ में;

न जाने किस अवधि तक
कर सकूंगा
इस अमरता का सही उपयोग !
बन अनश्वर मैं नहीं
फिर भी बनूँगा देवता,
देवत्व कैसे आ सकेगा,
स्वर्ग में
रहता नहीं हूँ !!
किन्तु विष से भागना भी
है न वश की बात,
है मेरे निकट अपराध भारी !

यदि हलाहल से डरा
तो ज़िन्दगी की जीत सारी
हार बनकर
रो उठेगी !
मोड़ पायेगी नहीं मुझको—
हलाहल की विषमता
और कटुता
जो कि—
युग युग से जगत को
भय दिलाती आ रही है,
और
मानव को सदा नीचा दिखाने के लिये
अपनी गुलामी में जकड़,
बेबस बनाकर
रख चुकी है !

—शेष है सघर्ष—
अमृत-पान कर मैं
विश्व में पाऊँ अमरता
और
बन्धनहीन, सीमाहीन होकर
हँस पड़ूँ विद्रूप से फिर
विश्व की
चिर बेबसी पर !
एक ऊँचे शृङ्ग पर चढ़कर
घृणा से, गर्व से में
व्यष्टि और समष्टि पर
वीभत्सता से मुस्कुराऊँ
—या—
युगों से त्रस्त मानव के
अमर कल्याण के हित
मैं उसे अमृत समझ लूँ,
जो कि है
संहार-स्रष्टा, नाश का मूलक
हलाहल,
और
मैं युग की प्रगति में दूँ सहारा !
कर हलाहल-पान मृत्युञ्जय बनूँ,
शङ्कर बनूँ
मैं चिर-प्रपीड़ित मानवों की
मुक्ति-दर्शन हेतु !

बुज़दिली होगी अगर मैं
डर गया बस
मृत्यु के प्रतिविम्ब भर से
और भागा
यदि शरण लेने अमरता की,
अमृत की
जो कि हैं उपहास—
मानव की महत्तम साधना के,
और—
लघु-सी एक सीमामात्र !

ज़िन्दगी के हैं यही
उतराव और चढ़ाव,
टेढ़ी और सीधी
राह के कुछ
मोड़ हैं यह शेष !!

हंस—मार्च १९४७ ई०

मत लौटो मेरे पास

मत लौटो मेरे पास, दूर तुम मीत रहो !

जब घिरी पीर की छाँह प्यार की आहट में,
जब लहरें खोले बाँह विलय होतीं तट में,
मैं दूर खड़ा अनजान निहारा करता हूँ—
मेरी रानी हँसती किरनों के घूँघट में !

कहता अपनी बिखरी
रागिनियों से छिपकर—
मत गूँजो मेरे पास, दूर संगीत रहो !
मत लौटोमेरे पास, दूर तुम मीत रहो !

जब झुकते नभ के नील नयन तन्द्रिल तन्द्रिल,
जब बँध जाते पीड़ा में निशि के स्वर स्वप्निल,
मैं दूर खड़ा अनजान निहारा करता हूँ—
मेरी रानी हँसती दीपावलि में झिलमिल !

कहता प्राणों के स्वप्नों से
थपकी देकर—
मत हो मेरे अनुकूल, स्वप्न विपरीत रहो !
मत लौटो मेरे पास, दूर तुम मीत रहो !

जब थक जाते हैं गीत विकल फ़रियादों में,
जब बंधता मन पागल विधु के उन्मादों में,
मैं दूर खड़ा अनजान निहारा करता हूँ—
मेरी रानी मुस्काती भूली यादों में !

कहता अपनी भूली
स्मृतियों को दुलरा कर—
मत आओ मुझको याद, सुदूर अतीत रहो !
मत लौटो मेरे पास, दूर तुम मीत रहो !

जब घिरते अँधियारे पावस के मेघ सघन,
जब झरते सावन में नभ के मद-भरे नयन,
मैं खड़ा पराजित दूर निहारा करता हूँ—
मेरी रानी हँसती बन विद्युत की तड़पन !

मैं मन की प्यास बुझाता हूँ
चुम्बन लेकर,—
अब लौटो मेरी हार, दूर तुम जीत रहो !
मत लौटो मेरे पास, दूर तुम मीत रहो !

आज यह कैसा प्रभंजन उठ रहा है ?

एक धुँधले आवरण में बद्ध मेरे प्राण,
घुटता जा रहा प्रतिपल धुआँ-सा आज मानस के गगन में !
विकल उन्मन मन । निरन्तर टीस, उठती जा रही है,
क्यों ?
नहीं मालूम मुझको आज यह कैसा प्रभंजन उठ रहा है ?
सूझती है आज मुझको क्यों न आगे राह ?
अन्धड़ हो रहा है प्रबलतर,
क्यों प्राण पर गहरा कुहासा छा रहा है ?
कुछ उफनता है हृदय में, पर झुलसते हैं न उससे प्राण,
केवल साँस होती जा रही अवरुद्ध—
जैसे उठ गई हो एक दृढ़ प्राचीर !

उठ, सुलग उठ, प्राण में पलती हुई ओ आग !
लेकिन मत उठा री यह विषैला धूम्र, पगली !
आग से जलता रहूँगा मैं निरन्तर—यह मुझे विश्वास,
लेकिन यह धुँआ दम घोटकर
मुझको पराजित कर न देगा !
कौन है यह एक धुँधली छाँह बोझिल कर रही जो प्राण ?
क्यों अब तक रही यह मौन ?
अन्तर में किसी की सुप्त-बेसुध याद जग मत आज,
मन में जागते तूफ़ान सो जा !
आज दोनों ओर मेरे आग, दोनों ओर है तूफ़ान,
ओ अज्ञात, सुन ले, क्या समझ पाती नहीं तू—
मैं अकेला खोजता हूँगा कहीं कोई सहारा ?
क्या नहीं तू देखती, पगली,

कि तेरी याद मेरे चरण का बन्धन बनी गति रोकती है,
जब कि पथपर पग मिलाकर बढ़ रहा सारा ज़माना ?

अरी, सुन री, खोजता हूँ एक—
केवल एक हमराही, सफर का मीत अपना;
मैं अकेला पग बढ़ाना चाहता हूँ !
देखता हूँ जिस तरफ़, आवाज़ उठती आज चारों ओर—
"पथपर तुम प्रगति करते चलो,
मानव खड़ा है रक्तकुंकुम से तिलक देने,
बटोही, तुम बढ़ो विश्वास लेकर शोषितों का, शासितों का,
उन सजग विद्रोहियों का जो कि सदियों से
नये विप्लव जगाते आ रहे हैं !"
किन्तु मेरे लड़खड़ाते हैं डगर पर पाँव,
पगश्लथ, दूर मंज़िल है कि मेरे कान बहरे हो गए हैं,
जो कि सुन पाता नहीं मैं आज अपने पास ही
उठती हुई जन-सिन्धु की हुङ्कार !
पग में गति मचलती है,
मगर मैं खोज लूँ किस ओर अपनी प्रेरणा का कूल ?
मेरी बेबसी अब छटपटाती है, कि झंझावात उठता है—
उठा लूँ कौन हिमगिरि-शृङ्ग अपने शीशपर
इन बाहुओं में वज्र भरकर
जो कि साक्षी दे कि पौरुष है अजस्र, अजेय;
जिसकी भृकुटियोंके एक इंगितपर बदलता विश्वका इतिहास,
जिसकी कड़कती-सी चुनौतीपर
झुक सदा जाता समय का भाल !

पर मैं कर रहा स्वीकार, मेरे बढ़ नहीं पाते क़दम तिल-भर,
कि मेरा मीत मुझसे दूर, मेरे पग न बन्धन-मुक्त,

मुझको खींचता किस ओर पागलपन हृदय का ?
तोड़ता है बाँध प्राणों में उफनता ज्वार,
रुकती साँस, धुँधलापन बिखरता है दृगों में,
किस भँवर में उलझ कर अब तिलमिलाती नाव ?
मेरी चेतना का गीत थमता जा रहा है—
शून्य, केवल शून्य !!
बोलो, खोज लूँ मैं कौन-सी चट्टान,
टकरा दूँ कि जिससे शीश अपना,
ताकि अणु-अणुमें बिखरकर चेतना औ' गति हृदय को
दे सकें सम्बल डगर के मुसाफ़िर को,
और लय हो बेबसी की नाव गति की लहरियों में !

× × ×

मैं तुम्हारी राह देखूँगा लिए विश्वास,
तुमसे माँगता हूँ बाँह, लौटो मीत मेरे !

नया समाज
'५०

नारी

स्वप्निल वीणा पर सिहर सिहर
झिलमिल यौवन संगीत मुखर
सित्-तरल गरल-सम मादक स्वर, मन नर्त्तित !
लुकछिप पुलकित नत-नयन युगल,
सस्मित कपोल विधु-किरण धवल
नभ-पथ चित्रित नक्षत्र-नवल-अनुवर्त्तित !

लय-निलय-नील चेतना शेष
विस्मित निशीथ-सा निर्निमेष
सुन रहा मुग्ध-गायन अशेष मन पागल !
ओ तन्द्रिल गीतों की लहरी !
मन्थर-मन्थर मन में बह, री !
विस्मृति की सरिता-सी गहरी, अतिचंचल !

श्यामल कुंतल ज्यों चल-मलयज
अरुणिम वदनाधर जलज-सलज
ज्योतिर्चुम्बन ऊष्मा से सज ज्यों राका;
संध्या-कुंकुम से चर्चित कर
आयी अम्बर में श्लथ पग धर
ढँक रश्मि- जाल से मुख मनहर ज्योत्स्ना का !

मृदु मन्द्र मन्द गति चन्द्र-तरी
रुपहरी लहरियों पर उतरी
गतिलय-तन्मय ज्यों किरणपरी ज्योतिर्मय !
तिरता विभावरी-दृग खुमार
बन कर निरभ्र-नभ-भ्रम अपार
झुक गयीं नैश-पलकें सभार चिर मधुमय !

उलझा स्वप्नों में दृग पल्लव
सोयी निशि पीकर ज्योत्स्नाऽसव
प्रिय-बाँहों में ज्यों बेसुध नव-परिणीता !
जागो री, तन्द्रिल नखत-नयन,
अधमुँदे, उनींदे-से, उन्मन;
सुरधुन-सी सतरंगिन, मेरी संगीता !

खुल गये गगन के ज्योतिद्वार
ज्यों फुल्ल-स्फूर्ति-शत सहस्रार
झर झर अणु-अणु में सुधाधार मधुसंचित !
नक्षत्र-चषक में विधु-मदिरा
पी बेसुध चंचल चिर-रुचिरा
उन्मद, अलसित मधुवात्-शिरा रोमांचित !

गा उठें विसुध संसृति तरु-तृण,
री, थिरके तेरा सृजन चरण,
मेरे गीतों की ज्योति किरण, स्वर्णाभा !
नाचो, अम्बर में बिखर बिखर,
नाचो, लघु लहरों की सम पर,
नाचो मेरी प्रेरणा मुखर, अमिताभा !

युग-प्रलय-सृजन भ्रू-आवर्त्तन,
युग-मन्वंतर तव गति-नर्त्तन,
तव-पगध्वनि में युग परिवर्तन अंतर्हित !
नाचो री, प्राण प्रणय-वृष्टा,
नाचो, अमृत - जीवन - द्रष्टा,
री आदि-सृष्टि, तू चिर-सृष्टा अपराजित !

आल इण्डिया रेडियो दिल्ली से
प्रसारित—'५४

शिकायत

प्राण,
देखो यह तुम्हारी चाँदनी का गीत
सोने ही नहीं देता !

बड़ी मजबूरियाँ भी हैं,
जहाँ तक दृष्टि जाती है—
समुन्दर की ख़ुमारी में भरी
अठखेलियाँ करती हुई लहरें
उनींदे गीत गाती हैं;
भुजाओं में बधा मेरी
शमा की ज्योति-सा मासूम बेसुध तन तुम्हारा,
ये भटकते-से तुम्हारे और मेरे स्वर
किसी सपनों भरे संसार में छिप प्यार करते हैं !

मत निहारो चाँद तारों को,
तुम्हारे नील नयनों की तरल छाया
गगन की नीलिमा को और गहरा कर रही है;
यह शराबी रात की मख़मूर-सी चितवन
अजब अन्दाज़ से मुझको बुलाती है;
इन्हीं ख़ामोश घड़ियों की
भटकती साँस में मैं लीन हो जाऊँ—
मरण कितना मधुर है !!

●

कुछ रूबाइयाँ

रात ढलने को अभी पूरी है,
मैं अकेला, बड़ी मजबूरी है;
चाँद उगता है, डूब जाता है—
कट नहीं पाती मगर दूरी है।

× × ×

कोई मुद्दत के बाद गाता है,
भारी मन, कौन याद आता है?
मैं नहीं वह, कि बाँह भरले किरन—
चाँद आता है, चाँद जाता है।

× + +

गीत जब गुनगुनाने लगता हूँ,
प्यार के स्वर सजाने लगता हूँ,
मेघ की गोद में ज्यों इन्द्रधनुष—
मैं तेरे पास आने लगता हूँ!

स्वाति के बूँद सीप तक आये,
चाँद के होठ दीप तक आये,
तेरी साँसों की गर्म वर्षा में—
मेरे चुम्बन समीप तक आये !

× × ×

राग बहता है, उसे बहने दो,
चाँद कहता है, सुनो, कहने दो;
रात बाक़ी है, मत हटाओ अधर
और कुछ देर पास रहने दो !

× × ×

नभ ने किरनों में मणि पिरोया है,
निशि ने नीलम का खेत बोया है;
चाँद मत झाँको, न लग जाय नज़र,
मेरी बाँहों में चाँद सोया है !

मेरे प्राणों में तुम समा जाओ,
आखिरी बार गीत गा जाओ;
भोर की गोद में सोती है शमा—
प्राण, कुछ और पास आजाओ !

× × ×

बुझ गया दीप, रात बीत गयी;
मीठे सपने-सी बात बीत गयी;
जलते अधरों की तपन चुम्बन की
मीठी बरखा में स्नात बीत गयी !

× × ×

मखमली दूब, थकी शबनम है,
भोर की आँख बहुत पुरनम है;
ढल गयी रात, याद आती है—
मेरे होठों में सोयी सरगम है ।